भूलना

चंदन पांडेय

हिन्दी ADDA

भूलना

सामने से जो महिला आ रही है वह इतनी खूबसूरत है कि याद रखने लायक है। इस महिला के साथ जो पुरुष है, वह मेरी ही उम्र का होगा।

उस सड़क के किनारे किनारे इतने अच्छे अच्छे फूलों के पेड़-पौधे हैं कि मैं उनके नाम भी नहीं जानता हूँ। सामने से आ रही महिला फूलों के पेड़ के पास खड़ी हो गई है और उसे फूल चाहिए। साथी पुरुष उसे समझा रहा है कि नीचे पड़ा फूल ले लो। वह ताजा

और तुरंत का तोड़ा हुआ फूल चाहती है। बासी और कुचला हुआ नहीं। पुरुष उसे तर्कों से ढाँप देता है और महिला मसोस कर नीचे पड़ा फूल ले लेती है।

मुझे हँसी आ रही है, वह भी इतनी जोर से कि मुझे अपना चेहरा दूसरी तरफ घुमाना पड़ेगा। पहले हँस लूँ। आप ही बताइए, अगर कहीं मेरी भी कोई प्रेमिका होती; जबकि मेरी एक सात साल की बिटिया भी है, और वह ऐसी ही कोई जिद करती, तो मैं खूब ऊँचे पेड़ की सबसे ऊँची टहनी से लगा फूल तोड़ कर ला देता। वह भी एक नहीं दो दो। और दो भी क्यों, ये फूल इतने सुंदर हैं कि अगर कोई मेरी प्रेमिका बनती है तो उसे, जरूर ऐसे सैकड़ों फूल चाहिए होंगे। उससे क्या, मैं सैकड़ों फूल ले आऊँगा।

मैं क्या नहीं कर सकता हूँ? फल तोड़ना, या शायद मैं अभी फूल तोड़ने की बात कर रहा था, तो फिर भी एक आसान सा दिखता काम है, कल ही की बात है, चंदू भाई ने बताया कि लखनऊ में आसानी से काम बँट रहा था। काम जरा कठिन था।

दरअसल, कल शताब्दी एक्सप्रेस का लखनऊ से दिल्ली पहुँचना निहायत जरूरी था। उस गाड़ी में राज्य के सर्वेसर्वा अपनी प्रेमिका के साथ बैठे थे। सर्वेसर्वा लगभग बूढ़े थे, प्रेमिका लगभग जवान थी और प्रेमिका की नाक के दाहिनी कोर पर एक फुंसी उग आई थी जिसके इलाज के लिए ये लोग दिल्ली जा रहे थे।

पर हुआ यह कि शताब्दी के प्लेटफार्म छोड़ने के पहले ही उसके इंजन की हेडलाइट फूट गई। तुर्रा यह कि प्रेमिका ने उसमें साजिश भाँप ली, कहा कि इसी गाड़ी और इसी इंजन से जाएँगे और मुँह फुला कर बैठ गई।

शताब्दी एक्सप्रेस की फूटी हेडलाइट तथा प्रेमिका की जिद को देखते हुए सरकार ने आनन फानन में एक भर्ती खोल दी। उसमें उम्र की कोई सीमा नहीं थी। बस आप दौड़ने वाले हों। काम बस इतना ही था कि माथे पर गैस बत्ती लेकर शताब्दी एक्सप्रेस के आगे आगे दौड़ना था। सभी दौड़ने वालों को दस हजार प्रति मिनट मिलता। दस हजार प्रति मिनट!

हजारों लोगों की भीड़ लग गई थी। अपने कंपार्टमेंट से देखते हुए सर्वेसर्वा की प्रेमिका नाक की फुंसी के दर्द के बावजूद उछल पड़ी थी। प्रेमिका ने 'जवान लोगों को दौड़ते हुए देखना कितना अच्छा लगेगा' कहा था और सर्वेसर्वा की तरफ हिकारत से देख कर मुँह फेर लिया था।

मैं भी अगर लखनऊ रहा होता और अगर दो मिनट भी दौड़ लेता तो बीस हजार रुपए। बाप रे! बीस हजार रुपए! पाँच-छह साल का खर्च तो निकल ही आता। और अगर एक हाथ या पाँव के कट जाने की कीमत पर अगला आधा मिनट भी दौड़ लेता तो पाँच हजार ऊपर से। अगे मा गो! हे भगवान ये मैं क्या सोच रहा हूँ। पच्चीस हजार! वह भी एक साथ! आप खड़े खड़े देख क्या रहे हैं, मुझे इतना ज्यादा सोचने से रोकते क्यों नहीं? मेरे भाई, मेरे बंधु मेरी सोच को वापस खींचिए। उसे दौड़ा कर पकड़ लीजिए। मैं आपका आभारी रहूँगा। हमेशा हमेशा के लिए।

तो देखा, मैं क्या क्या कर सकता हूँ? फूल तोड़ सकता हूँ; जबकि मेरी पत्नी है और सात साल की बेटी भी। रेलगाड़ी के आगे दौड़ सकता हूँ बस एक मौका तो मिले।

हालाँकि पुलिस वालों की हालत देख कर यह कहते हुए डर लगता है, पर अगर मुझे पुलिस की नौकरी में लगा दें, तो मैं दंगों पर, अपराधियों पर काबू पा लूँगा। समाज सुधार की बाबत यही कहूँगा कि मुझे समाज कल्याण अधिकारी बना कर देख लीजिए।

और मैं कहता हूँ दंगे या अपराध की नौबत ही क्यों आए, बस मुझे क्षेत्र विशेष में दंगे या अपराध से बचने के लिए किसी बड़े महाविद्यालय में शिक्षक नियुक्त कर दीजिए - ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा आदि अनादि का ऐसा पाठ पढ़ाऊँगा कि लोग दंगे और अपराध जैसे शब्द भी भूल जाएँगे। कोई मौका तो मिले।

फिलहाल मैं अपने गाँव से सटे कस्बे के एक निजी विद्यालय, माँ शारदे शिक्षा निकेतन में शिक्षक हूँ और; **275 (+5)** रुपए प्रति माह की तनख्वाह भी है। इस विद्यालय में मैं वही सब पढ़ाना चाहता हूँ जिससे कि अपराध और दंगे न हों। यहाँ मेरे पढ़ाने का एक फायदा यह भी है कि वहीं मेरी बेटी शालू पढ़ती है और उसकी फीस नहीं देनी पड़ती है।

मेरी बेटी शालू, अभी सात साल की है और कक्षा चार में पढ़ती है। जब वह बात करती है तो मन खुश हो जाता है। उसकी बातों से सारा बोझ, सारी थकान उतर जाती है। मेरी पत्नी तो बड़े प्यार वाली फटकार से कहती है - 'बस दिमाग थोड़ा तेज है, और कुछ खास नहीं।' मेरे पिताजी की तो जान शालू में बसती है। माँ की भी जान। पिताजी के पैरों में चौबीसों घंटे रहने वाला भयानक दर्द नहीं होता तो पिताजी, हो सकता है शालू के साथ विद्यालय भी आते जाते। बाकी समय शालू माँ और पिताजी के साथ ही रहती है।

मैं समझता हूँ।

शालू उन्हें मेरे छोटे भाई गुलशन का आभास कराती है। मुझे भी उतनी ही सुंदर, उछलकूद में भी वही बचपन वाले गुलशन जैसी और पढ़ाई में भी उतनी ही तेज लगती है।

शालू की पढ़ाई का आलम यह है कि हर साल उसे एक क्लास फँदाना पडता है। संबंधित शिक्षक बताते हैं - कि पूरी किताब ही रट जाती है - कि मुझे शालू को किसी बड़े शहर के बड़े स्कूल में प्रवेश दिला देना चाहिए - कि शालू बड़ी होकर खूब नाम करेगी। सोचिए जरा, इन बातों मुझे कितनी खुशी होती होगी?

मुझे भी लगता है कि मेरे भाई गुलशन की देखने-सुनने की क्षमता के असामयिक लोप से उपजी सारी असफलताओं से जो कुछ भी सपनों सरीखा हममें छूट गया था, वह मेरी बिटिया रानी पलक झपकते ही पूरा कर देगी।

सपने भी सभी तो रहे नहीं, दवाओं के एक्सपायरी डेट की तरह सपनों की भी उम्र होती होगी। जैसे उन दिनों मेरी छोटी बहन सीमा का सिरदर्द। उसका सिर वीभत्स तरीके से फूल जाया करता था। भीषण दर्द की वजह से उसके सिर की नसें सूज जाती थीं। चेहरा विकृत हो जाया करता था। सीमा अपने माथे को प्लास्टिक की मोटी रस्सी से खूब कस कर बाँध लेती थी। रह रह कर उठती उसकी चीख से दीवारें, जैसे डोलने लगती थीं।

अपने तईं हमने बहन का बहुत इलाज कराया। कोई पागलपन की दवा देता था, कोई नींद की और कोई पेट की दवा देता था। एक आखिरी इलाज हम लोगों के पास था - भाई की नौकरी, जो हमारे सपनों की दुकान बनने वाली थी।

बहन के बाद वह सपना भी समाप्त हो गया। हाँ, ये जरूर है कि बाकी सपने जस के तस हैं। पिता जी की बीमारी, माँ की बीमारी, दो तीन कमरों का कोई घर बने जिसमें बारिश का पानी भीतर न गिरे, दो जून का बढ़िया खाना - और भी ढेर सारे सपने। इतने सपनों के बीच शालू का पढ़ाई लिखाई में इतना तेज होना।

और तो और, अंधा और लगभग बहरा मेरा भाई गुलशन जो चुपचाप घर के बाहर की झोंपड़ी में बैठा रहता है, वह यह जान कर कितना खुश होगा कि शालू बिल्कुल उस पर गई है, सुंदर, उद्दंड (चंचल कह सकते हैं) और तेज। सच तो यह भी है कि शालू कितनी भी बुद्धिमान क्यों न हो जाए, गुलशन को लाँघ पाना उसके लिए थोड़ा कठिन

होगा। एक समय वह भी था, जब गुलशन ने इंटरमीडिएट की परीक्षा में समूचे शहर में पहला स्थान प्राप्त किया था।

मेरी बेटी ने एक दिन मुझे एक पर्चा थमाया, बताया कि कक्षा में सभी को मिला था और इस पर्चे को भरना है, जो सबसे सटीक उत्तर भरेगा उसे ट्रॉफी और सर्टिफिकेट मिलना था। पर्चा मुझे याद रह गया :-

आतंकवाद : देश का अभिशाप

(जागरुक देशभक्तों के लिए कुछ यक्षप्रश्न**)**

1. आतंकवाद क्या है?

उत्तर **:-**

2. आतंकवाद से राष्ट्र को क्या नुकसान है?

उत्तर **:-**

3. आतंकवादियों की पहचान क्या है?

उत्तर **:-**

4. अगर कहीं आतंकवादियों से सामना हो जाए, तो आप क्या करेंगे?

उत्तर **:-**

(हस्ताक्षर**)**

सहयोग राशि **:** दो रुपए मात्र।

अध्यक्ष,संग्राम सेना

वह पर्चा मैंने शालू को वापस थमा दिया। उससे पूछा कि यह पर्चा उसे किसने दिया था और यह भी कहा कि कल प्रधानाचार्य महोदय से बात करूँगा। पता नहीं, शालू ने क्या समझा और क्या नहीं, पर कुछ देर बाद वह अपने दादाजी से उसे भरने की जिद कर रही थी। पिताजी ने उस पर्चे को नहीं फाड़ा होगा तो सिर्फ इसलिए कि वह पर्चा शालू का था।

आतंकवाद। इस शब्द की सवारी गाँठ कर मैं अपनी बेटी से अलग होता हूँ और उस पलानी में पहुँचता हूँ जहाँ मेरा भाई बरसों से अकेला है। लगभग बहरा और पूरी तरह अंधा मेरा भाई अपने चेहरे को इस ऊँचाई से उठाए हुए है जैसे सामने खड़े किसी व्यक्ति से मुखातिब हो, और उस पर उसका लगातार मुस्कराना। पलानी में नीमअँधेरा है। भाई कुछ टटोल रहा है, शायद माचिस की तीली, अब कान खोदेगा।

मेरे भाई गुलशन के चेहरे पर सात-आठ वर्षों पहले की वह गली उभरती है। व्यस्त सड़क से बहुत तीखा मोड़। सँकरी गली। मुर्गे-मुर्गियों की भाग-दौड़। नालियों में बैठे बत्तख। भिनभिनाहट सा शोर। बर्तनों के गिरने की आवाज घरों के बाहर तक ही पहुँच रहे थे। सरकारी नलों के पास बैठे लोग। नहाते, कुल्ला करते, कपड़ा फींचते लोगों के बीच राजनीतिक चर्चा का घमासान। सुबह की धूप। अक्षयवर चाचा का रिक्शा गली पार कर रहा है कि बहुत जोरों की आवाज होती है।

भाई के चेहरे से वो गली गायब हो जाती है। मुझे हँसी आ रही है।

मुझे सब याद है।

जब वह बहुत तेज वाली आवाज हुई थी, तो गली के लोगों की भीड़ रिक्शे की तरफ दौड़ पड़ी थी। उसमें मैं भी था। हम लोग दौड़ पडे थे, हँस रहे थे और आतंकवाद के खिलाफ नारे लगा रहे थे।

अक्षयवर चाचा के रिक्शे का अगला टायर बोल गया था। यह आवाज वहीं से आई थी। हम सब ने भी महज तफरीह के लिए उन्हें घेर लिया था। वरना तो, वो हमारी ही गली में रहते थे। बाद में हमने लाख समझाया कि ये सब मजाक था, पर अक्षरवर चाचा डर गए थे।

दिक्कत तब हुई थी जब शोर सुन कर गली के तुरंत बाहर मुख्य सड़क के चौराहे पर वाहनों से वसूली के लिए चौबीसों घंटे तैनात रहने वाले पुलिस के लोग भी गली में आ गए थे। हम सबने पुलिस के लोगों को समझाया और वह मान भी गए पर जाते जाते उन लोगों ने रिक्शे में सीट हटा कर देखा, रिक्शे के नीचे देखा, कहीं बम तो नहीं है, हिदायत दी - टायर ट्यूब सही रखो नहीं तो डाल दिए जाओगे। हम सबको भी डंडा दिखाया - ज्यादा जवानी चढ़ गई है क्या?

इस घटना के होने तक हमारे शहर में नए एस.पी. का आना नहीं हुआ था, इस तरह वह नियम तो दूर दूर तक लोगों के ख्वाबों में भी नहीं था, जो एस.पी. ने शहर में आने

के बाद अपराध और आतंकवाद कम करने के लिए लगाया था जिसमें हरेक पुलिसकर्मी को रोज एक अपराधी पकड़ना होता था।

अक्षयवर चाचा वाली घटना से डरे तो हम भी थे पर अक्षयवर चाचा से कम ही डरे थे। फिर भी हमारे बीच आतंकवाद का मजाक, आतंकवाद की गाली, आतंकवाद का खेल सब चलता रहता था। हम दोस्तों को 'साला' बाद मे 'आतकंवादी कहीं का' पहले कहा करते थे। उन दिनों देश का माहौल ही कुछ ऐसा था। समाचारपत्र, पत्रिकाएँ, टेलीविजन, शासन का बहाना सब कुछ आतंकवाद से शुरू होकर आतंकवाद पर ही समाप्त होता था।

गाँव चले आने के कारण इन दिनों के हालात के बारे में हमें विशेष जानकारी नहीं हैं। दरअसल उन्हीं दिनों एक साथ कुछ ऐसी बातें हो गई थीं कि हम गाँव चले आए थे। पिताजी की सिनेमाहाल वाली दरबानी छूट गई थी। मेरे ट्यूशन भी पर्याप्त नहीं थे, माँ का दूसरे घरों में बर्तन पोछे का काम भी ठीक नहीं चल रहा था। फिर भी भाई की पढ़ाई अगर जारी रही होती तो हम कुछ भी कर-धर के शहर से चिपके रहे होते।

उन्नीस सौ अस्सी में जन्मा मेरा भाई मुझसे पाँच साल और पिताजी से पूरे पूरे तैंतीस साल छोटा है। पच्चीस की उमर में ही वह पिछले सात आठ सालों से लगातार बैठा हुआ है और न जाने कितने सालों तक ऐसे ही बैठा रहेगा। इतनी कम उम्र में भी उसे कुछ सुनाने के लिए उसके कान को अपनी दोनों हथेलियों की गोलाई में समेट कर और हथेलियों की उस गोलाई में मुँह घुसा कर खूब तेज तेज चिल्लाना पड़ेगा, तब जाकर वह कहीं कुछ सुन पाएगा। देख तो, खैर, वह बिलकुल भी नहीं पाता है।

जिन दिनों गुलशन ऐसी हालत में पहुँचा था, उन दिनों हम सोचते थे कि जो कुछ भी महत्वपूर्ण घट रहा हो, उसे गुलशन को बताया जाना चाहिए। क्रिकेट की खबरें, फिल्मों की बातें, विशेष तौर पर शाहरूख खान की फिल्मों की कहानियाँ हम उसके कान में चिल्ला चिल्ला कर बताते थे। पर धीरे धीरे हमारा उसकी इतनी सघनता से देखभाल करना कम होता गया।

हमारे पास न तो इतनी ऊर्जा है और न ही उसकी कोई जरूरत कि गुलशन के कान में चिल्ला कर सब कुछ बताएँ। यह काम अब मनबहलाव के लिए गाँव के बच्चे करते हैं या फिर कोई खुशखबरी सुनानी हो तो शालू यह काम करती है।

अकेले पलानी में पड़े-पड़े गुलशन को जब भी कोई जरूरत हुई तो एक बार जोर से मुझे, शालू को, या माँ को पुकार लेगा। तब जिस किसी के पास फुर्सत हुई वह उसके

पास आ जाएगा, वरना गुलशन को लंबा इंतजार करना पड़ सकता है। हमेशा मुस्कराते रहने का उसने शगल पाल लिया है।

जब गुलशन के खाने का समय होता है तब भी वह मुस्कराता ही रहता है। पहले जो होता रहा हो, पर अब हम उसके हाथ धुला कर उसकी कोई उँगली खाने में डुबो देते हैं, वह खाने लगता है। तकलीफ तब होती है, जब उसे चाय, गर्म दूध; कभी कभार या कोई गर्म खाना देना होता है।

अपनी तरफ से हम भरपूर कोशिश करते हैं कि चाय या गर्म खाना गुलशन के शरीर के किसी कठोरतम हिस्से से छुलाएँ ताकि उसे न के बराबर तकलीफ हो। पर होता यह है कि जब हम उसे चाय छुलाते हैं तो मुस्कराते हुए ही वह बुरी तरह काँप जाता है, दाँत पर दाँत चढा कर आँखें और मुठ्ठियाँ भींच लेता है। उसका चेहरा विकृत हो जाता है; मुस्कराता रहता है।

या फिर अगर कोई आकर गुलशन की बाईं बाँह छू ले तो गुलशन, अपने अनुमान से उसी तरह अपना सिर इतना ऊपर उठाता है जितनी एक व्यक्ति की लंबाई हो सकती है। अगर वह बाईं बाँह छूने वाला आदमी भाग कर दाईं तरफ आ जाए तो भी गुलशन अपने को पूरी तरह चैतन्य दिखाने की कोशिश में बाईं तरफ ही सर उठाए, हाथ मिलाने के लिए दाहिना हाथ उठाता है, तमाम प्रश्न पूछने लगता है, कैसे हैं, क्या हो रहा है, क्रिकेट मैच हो रहा है या नहीं - या फिर - (कभी कभी) मुझे पेशाब करना है। गुलशन यह जताने की कोशिश करता है कि वह सामने वाले को देख सकता है, सुन सकता है।

इस बात पर दूसरों की जो हालत होती है, वह तो होती ही है, वह भाई का मजाक उड़ाने वाला आदमी भी भाई की इस दशा पर उदास हो जाता है।

मेरा भाई, गुलशन, ऐसा नहीं था।

उन दिनों हम बनारस में रहा करते थे, जब मेरे भाई गुलशन को इंटरमीडिएट की परीक्षा में समूचे शहर में पहला स्थान प्राप्त हुआ था। फिर तो हमारे ख्वाबों के पंख लग गए।

लंबा-चौड़ा मेरा भाई इतना सुंदर था कि रामाशीष चाचा की उस बात से सभी लोग पूरी तरह सहमत थे। रामाशीष चाचा का कहना था कि ऐसे खूबसूरत नौजवान को सिर्फ सपनों में दिखना चाहिए। सपने ऐसे कि ये लड़का घोड़े पर चढा हो, उस सपने में एक

तरफ समुद्र और दूसरी तरफ पहाड़ होने चाहिए, घोड़े पर भागता हुआ ये लड़का आपसे ही मिलने आ रहा हो।

गुलशन चेहरे मोहरे में पूरी तरह माँ पर गया था। इसीलिए हमें शुरू से पता था कि वह बेहद भाग्यशाली होगा। मेरे घर तथा पड़ोस में इस नियम को बेहद उत्साह से देखा जाता है, जिसमें अगर बेटे का चेहरा माँ से और बेटी का चेहरा पिता से मिले तो ऐसे बेटे बेटियाँ भाग्यशाली होते हैं। इस लिहाज से बहन को भी भाग्यशाली होना था। मैं जरूर भाग्यशाली नहीं था और छब्बीस-सत्ताईस की उम्र में दो दो सौ के पाँच और तीन सौ का एक, कुल छह ट्यूशन पढ़ा रहा था।

इंटरमीडिएट में इतने बढ़िया के बाद हमारी, मेरी और पिताजी की, दिली तमन्ना थी कि गुलशन देश के सबसे अच्छे इंजीनियरिंग कालेज से इंजीनियरिंग की पढ़ाई करे। फिर वह चाहे तो कलक्टरी कर ले या फिर वह सलीके से दलाली वाला काम, मैं उस काम की विशेष संज्ञा भूल रहा हूँ, वही जिसमें खूब मोटी तनख्वाह होती है, मुनीमी जैसा काम है वो, भाई, जिसमें रातों दिन लोगों को ज्यादा लूटने की योजनाएँ बनाई जाती हैं।

भाई को लेकर जो हमारी सबसे क्रूर ख्वाहिश थी, वह अमीर बन जाने की थी। गुलशन की नौकरी को लेकर हम दस रुपए तक ही सोच पाते थे। दस हजार रुपए के पार की तनख्वाह तक जैसे ही हमारी बात पहुँचती **(**मेरी**,** पिताजी**,** सीमा**,** माँ**)** - तो मेरे पेट में कैसी तो हुदहुदी मच जाती थी, मैं उत्तेजित हो जाता, मेरे हाथ पैर काँपने लगते थे। हम सभी की हालत कमोबेश ऐसी ही होती।

सबसे होशियार क्षणों में भी जब हम सब दस हजार और उससे ज्यादा रूपयों के बारे में सोचते तो यही सोचते कि हम लोग इतने रुपए का आखिर करेंगे क्या?

ऐसी बातों के दरमियान भाई के सामने आते ही हम सभी बातचीत समेट लेते थे। हममें से कोई गुलशन की तरफ मुस्कराते हुए देखता। पिताजी और माँ की मुस्कान हम भाई बहन की मुस्कान से जरा अलग होती थी - नर्म। एक साथ हम सभी गुलशन को यह एहसास दिलाना चाहते थे कि, देखो, तुम हमारे लिए क्या हो?

हमारी क्रूर ख्वाहिश के अलावा अन्य ख्वाहिशों में पिताजी के पैरों में अनवरत रहने वाले उस दर्द का इलाज कराना था, जिस दर्द को हम टटाना कहते थे।

पंद्रह-सोलह साल पहले हम गाँव से आए थे, तभी से पिता जी सरस्वती सिनेमा (लक्सा रोड पर है) की दरबानी कर रहे थे। पिताजी के पैरों की पिण्डलियों का वह दर्द सरस्वती सिनेमा की दरबानी में लगातार खड़े रहने से उपजा था। जितने समय पिताजी घर पर रहते, भाई को पैरों पर चढ़ाए रहते थे। कई बार पूछने पर बताया था कि दर्द हमेशा रहने लगा है, चलने के क्रम में दर्द इतना बढ़ जाता है कि आगे घिसट पाते हैं, लगता है कि पैर अररा कर कट जाएँगे।

मैं सुनता रहा था।

ठीक ऐसा ही बहन दर्द को लेकर भी था, जिसके बारे में शायद, अभी तक मैं बता नहीं पाया, तमाम दवाइयों, प्लास्टिक की रस्सी से सिर बाँधना, चीख। होता ये था कि हमारी बातचीत अगर हँसी की पराकाष्ठा पर पहुँचती तो अचानक मेरी बहन हँसते-हँसते सिर पकड़ लेती थी। उसके ऐसा करते ही हमारा दिल बैठने लगता था। हम जान जाते थे कि अब बहुत पैसा होगा।

हम सभी शाश्वत बीमार थे। ऐसा इसलिए क्योंकि हमें लग रहा था कि, हमें अपने सुख, दुख, तीज, त्योहार को तब तक के लिए टाल देना था जब तक गुलशन किसी नौकरी में न आ जाए। पिताजी के पंद्रह सौ और मेरे तेरह सौ में से घर खर्च हटा कर बाकी बचा पूरा पैसा गुलशन पर निवेश हो रहा था। अब तो हम त्योहारों की तिथियाँ तक ध्यान में नहीं रख पाते थे और इससे माँ को बहुत परेशानी होती थी, माँ का कोई न कोई व्रत हमेशा छूट जाया करता था।

सब कुछ 'बस सपनें पूरे होने वालें हैं' , जैसा चल रहा था।

हमारी भावी एंव भव्य योजनाओं पर भाई ने यह कह कर पानी फेरने की कोशिश की थी, मुझे याद है, कि वह तो बिना इंजीनियरिंग की पढ़ाई किए भी अच्छी नौकरी पा लेगा। भाई के इस उद्दंड उवाच से मैं सकपका गया था। मुझे लगा कि, कहीं मेरे उद्दंड भाई के दिल में कोई मासूम कोना तो नहीं उभर आया था, या कि ये कौन सी खुराफात थी?

मुझे लगा था कि कहीं वह अपने खेलते कूदते रहने की योजनाओं को विस्तार तो नहीं दे रहा था क्योंकि जितना कम समय अब तक वो पढ़ाई पर देता आया था उतने में तो प्रथम श्रेणी भी लाना मुश्किल हो जाता, शहर में प्रथम स्थान पाना तो फिर भी एक बात है।

क्रिकेट और फिल्मों के बेतरह शौकीन मेरे भाई को जब पढ़ना होता तो उसी एक कमरे में दीवाल की तरफ मुँह करके पढ़ने बैठ जाता। वही एक कमरा था जिसमें हम सभी रहते थे, साथ में बाथरूम भी था। गुलशन के पढ़ने के दौरान लाख होहल्ला हो वह पीछे घूम कर देखता भी नहीं था। लेकिन जब पढ़ाई खत्म कर लेता तो सारा घर सर पर उठा लेता था। फिल्मों की बातचीत, क्रिकेट, गाँव जाने की बातचीत।

अपनी योजनाओं के प्रति गुलशन के निशेधात्मक भाव को लेकर चिंतित हम लोगों ने एक दिन गुलशन को हड़काया। पिताजी तो चुप ही थे, मैं बोले जा रहा था। मैं गुलशन को दुनिया जहान की बेमतलब की बातें समझाता रहा था।

पर भाई ने यह कह कर मुझे चारों खाने चित्त कर दिया था कि वह इंजीनियरिंग वगैरह सिर्फ इसलिए नहीं करना चाहता है क्योंकि वह घर की हालत देख रहा है। नौकरी तो कुछ भी पढ़ के पाई जा सकती है। वरना जो आप लोगों की मर्जी।

'घर की हालत देख रहा हूँ' वाली बात मुझे अच्छी नहीं लगी थी। मैंने गुलशन को बताया कि पढ़ाई के लिए बैंक लोन देगा। या फिर खुदा न खास्ते मेरी ही नौकरी लग गई तो। ये जरूर था कि नौकरी के नाम पर अब मुझे उन सपनों के अंश दिखाई देने लगे थे जिसमें मैं रेलगाड़ी के आगे गैसबत्ती लिए दौड़ रहा हूँ। उन दिनों तक मुझे इस सपने में सिर्फ गैस बत्ती दौड़ती हुई दिख रही थी, मैं नहीं। मैं गुलशन को बताना चाहता था कि 'कुछ भी' पढ़ कर नौकरी पाना मुश्किल है।

मैंने गुलशन से यह भी कहा था कि कहीं ऐसा तो नहीं कि वह आगे की कठिन पढ़ाई के नाम पर डर रहा है। इस बात पर गुलशन ने रुआँसा होकर मुझे देखा था। मुझे याद है, उसके देखने में ऐसा कुछ था कि 'ये आप बोल रहें हैं, भईया।'

फिर तो हमारा गुलशन एकाएक बदल गया। कल तक एकदम कम पढ़ने वाला गुलशन, अगले ही दिन से किताबों में डूब गया था। वह किताबों में डूबता जा रहा था, हम खुश होते जा रहे थे। भाई की पढ़ाई में खूब पैसा लगेगा, यह जानकर हम नए सिरे से नौकरियाँ तलाशने लगे थे। माँ ने फिर से बर्तन पोछा वाला काम शुरू कर दिया था। मैं और मेरी बहन प्राइवेट स्कूलों के चक्कर लगा रहे थे।

दिन भर हम भाई बहन मास्टरी ढूँढ़ते और रात में नींद आते ही शहर के सबसे अच्छे स्कूल में पढ़ाने चले जाते। मैं प्रिंसिपल हो जाया करता था। बहन भी मेरी ही गाड़ी से लौटती थी। लौटते हुए हम कोई खरीदारी करते या मन हुआ तो कभी फिल्में भी देख लेते थे। दिक्कत सिर्फ तनख्वाह की थी। नींद खुलने के तुरंत पहले हमें तनख्वाह

मिलनी थी पर असावधनीवश या जाने क्यों हमेशा तनख्वाह में मिले नोटों के बंडल नींद में ही छूट जाते थे। एक बार तो मैंने खूब कस कर नोटों को पकड़ लिया था और पूरी तैयारी में था कि एक छलाँग लगाता और नींद से उछल कर बाहर पहुँच जाता, लेकिन - दूसरी दिक्कत यह थी कि सुबह उठ कर चाय माँगने पर बहन इसलिए चाय देने से मना कर देती थी, कि रात में उससे अधिक तनख्वाह मुझे मिली होती थी।

हम सबने - मैं, पिताजी, माँ, बहन - अपनी लगातार व्यस्तताओं के बावजूद गुलशन के पल पल का ख्याल रखना शुरू कर दिया था। पढ़ाई कठिन थी। उसके खाने पीने से लेकर नहाने धोने तक हम हमेशा तत्पर रहने लगे थे, ये तौलिया ले लो, आज सर्दी है - कम नहाना, क्या खाओगे - तमाम, तमाम। उसकी तरफ से कोई फरमाइश नहीं होती, इसलिए माँ लगातार उसके लिए सरसों की कढ़ी बनाने लगी थी।

उन दिनों हमें ये बराबर महसूस होता रहा था कि गुलशन का बोलना चालना एकदम न के बराबर रह गया है। बस, कभी कभी माँ से बोल लिया। खेलकूद, यार, दोस्त सब छूट गए थे। पर गुलशन के पढ़ते रहने को लेकर हमारी खुशी इतनी ज्यादा थी कि हम कुछ और देख कर भी नहीं देख पा रहे थे। हमारे बाहर, हमारे बीच में, हमारे भीतर कुछ ऐसा था जो निरंतर अपनी गति से घट रहा था, बस हमें उसकी खबर नहीं थी।

अपने भीतर कुछ अनजाना और कुछ बेतरतीब घटने की जब मुझे पहली बार पुष्टि हुई, तब तक गुलशन को एक ही स्थान पर बैठ कर पढ़ते हुए ढाई तीन महीने बीत चुके थे। हम दोनों भाई बहन की प्राइवेट स्कूलों में मास्टरी की तलाश जारी थी। लेकिन जिस दिन की ये बात है, उस दिन हम घर पर ही थे, मुझे याद है।

उस दिन शायद पिताजी छुट्टी पर थे, या ड्यूटी से आ चुके थे, ये तो याद नहीं, पर बात यही हो रही थी कि कहीं से मोटा पैसा मिल जाता तो सीमा का इलाज जल्दी ही करा लिया जाता। हो सकता है उस वक्त सीमा को सिरदर्द से राहत नहीं होगी, तभी वो पिताजी की इस राय पर हल्के से मुस्कराई थी कि - 'कहीं से मोटा पैसा मिल जाता...' सीमा को मुस्कराते देख हमें बहुत खुशी हुई थी।

बीमार बहन को और ज्यादा खुश करने के लिए मैं पिताजी कि उस 'कहीं से पैसा मिल जाता' वाली ख्वाहिश से तमाम तरह के चुटकुले बनाने लगा था। मैं कह रहा था कि 'काश छप्पर फट जाए - या फिर आँधी आए और कोई तिजोरी उड़ा लाए किसी का पैसा भरा बैग मिल जाए...' मेरी बातों और कहने के अंदाज के असर से माँ और सीमा जोर जोर से हँस रही थीं और पिताजी सर झुकाए मुस्करा रहे थे।

अपने बेवकूफाना चुटकुलों पर जब कनखियों से मैंने पिताजी को सर झुकाए मुस्कराते हुए देखा तो मेरा उत्साह बढ गया था, चुटकुले कहने की मेरी गति भी दोगुनी हो चुकी थी। मैं अनापशनाप कैसा भी चुटकुला सुनाए जा रहा था। माँ और सीमा का हँसना भी तेज से और तेज होता गया था। पिताजी का मुस्कराना भी।

मुझे याद है, उन लोगों के हँसने और मुस्कराने से मैं हद से ज्यादा उत्तेजित हो गया था पर उसी उत्तेजना में मुझे अचानक ख्याल आया था कि अभी हँसते हँसते बहन के सिर का दर्द बढेगा और वह अपना सर पकड़ लेगी। तब हम सब चुप और उदास हो जाते। इस ख्याल से डर कर मैं बहन की तरफ देखने लगा था पर भीतर की न जाने किस भावना से मैं प्रेरित हो गया था कि चाह कर भी अपनी बातें और चुटकुले कहना रोक नहीं पा रहा था कि तभी माँ ने हँसना बंद कर दिया था। उसने हमें भी इशारे से चुप हो जाने के लिए कहा था। फिर इशारे से ही माँ ने गुलशन की तरफ ध्यान दिलाया था -'वह पढ़ रहा है न!'

अब भी मुझे घनघोर आश्चर्य होता है। उस दिन भी हम आश्चर्यचकित होकर रह गए थे कि यहीं चार पाँच हाथ की दूरी पर बैठे गुलशन को हम आखिर भूल कैसे गए थे। कम से कम मुझे तो इसकी रत्ती भर ख्याल भी नहीं रहा था कि गुलशन उस कमरे में मौजूद भी है।

और फिर अपने भाई को ही भूल जाने की अनहोनी से भयभीत होकर जब मैंने घूम कर पीछे के दिनों में झाँका तो देखा की हम बहुत पहले से ही गुलशन को भूलते जाने की प्रक्रिया में शामिल हो चुके थे।

पिछले दिनों में लौटते हुए जब मैं इस वर्ष के दशहरे के एक दिन पहले वाली रात में झाँकता हूँ तो पाता हूँ कि माँ, मैं और पिताजी बिस्तर पर जा चुके हैं और बहन सोने से पहले बत्ती बुझा कर अपने बिस्तर पर चली आती है कि कुछ क्षणों बाद अचानक बत्ती जल उठती है।

बत्ती जलते ही हम सभी उठ कर बैठ गए थे। अफसोस से घिरे हम लोग बस इतना ही कह पाए थे - जरा भी ध्यान नहीं दिए, बाबू। गुलशन बिना कुछ कहे चुपचाप पढ़ने बैठ गया था।

बोलना चालना तो गुलशन ने तभी से बंद कर दिया था जिस दिन से हमने उसे इंजीनियरिंग कालेजों की प्रवेश परीक्षाओं की तैयारी में लगा दिया था। हो सकता है जरूरी क्रियाकलापों के अलावा बाकी समय सिर्फ पढ़ाई लिखाई पर देने से उसे कुछ

अन्य सोचने की फुर्सत भी नही रही होगी। या फिर बहुत संभव है यह भी हुआ हो कि हमारे सपने, हमारी उम्मीदें उसके कहीं गहरे जाकर धँस गई हों। उन दिनों गुलशन कुछ बोला भी होगा तो छठें छमासे ही, वह भी सिर्फ माँ से ही बोला होगा।

हम, हम सभी, ठीक ठीक यह निर्णय करने की स्थिति में कभी नहीं रहे कि यह भूलना, आखिरकार, किसकी तरफ से हो रहा था। गुलशन हमें भूल रहा था या हम गुलशन को भूल रहे थे।

खाने को ही लें, उन दिनों जब कभी माँ गुलशन से कुछ दुबारा परोसने के लिए पूछती तो वह या तो सर नहीं डुलाता, या कभी 'हाँ' में डुलाता कभी 'नहीं' में डुलाता। पर इसका यह मतलब कतई नहीं होता था कि अगर वो 'हाँ' में सर डुलाता तो उसे कुछ चाहिए ही चाहिए या फिर वो 'ना' में सर डुलाता तो उसे कुछ भी नहीं चाहिए होता था। वह गायब भी नहीं होता था। दरअसल सर नहीं डुलाते हुए, सर 'हाँ' में डुलाते हुए, या सर 'न' में डुलाते हुए गुलशन माँ से नहीं, अपने भीतर के किसी प्रश्न से मुखातिब रहा करता होगा।

हम इस बात को बहुत बाद में समझे थे। माँ ने उस दिन छठ का परना (पूर्णाहुति) किया था और हमें खाने में सब्जी और प्रसाद का ठेकुआ मिला था। माँ ने गुलशन से पूछा था - ठेकुआ और दें? गुलशन ने 'हाँ' सर हिलाया था। पर माँ के ठेकुआ परोसते ही गुलशन ने माँ की तरफ देखते हुए कहा था - 'अरे'! (उसने हमारी तरफ देखना तो कब का बंद कर दिया था, हम सोचते थे ऐसा उसकी पढ़ाई की वजह से है।) 'अरे' कहने के बाद, मुझे याद है, उसने सिर नीचे कर के 'च्च' कहा था।

यह तो उसकी, हमें भूलते जाने की प्रक्रिया थी। मेरे पास कारण तो कई आए पर मैं स्वयं भी कभी नहीं समझ पाया - ऐसा क्यों हो रहा था? कैसे हो रहा था?

जैसे, कई शामों को ऐसा हुआ कि हम या तो छत पर चले जाते, बाँस की सीढ़ी से छत पर जाने में हमेशा फिसलने का डर बना रहता था, या कभी कभार बाजार भी चले जाते। और घर में ताला लगा देते थे। वापस आकर बेतरह शर्मशार होते। गुलशन यहीं, इसी कमरे में पढ़ रहा होता था।

गुलशन को भूलते जाने की बीमारी अगर सिर्फ मुझे होती, तो मैं कभी यह सोचने की कोशिश भी नहीं करता कि ऐसा क्यों हो रहा है। पर मैं देख रहा था कि हम सभी गुलशन को भूलते जा रहे थे। और तो और माँ भी। हमारी तकलीफ यह थी कि ऐसा हमसे अनायास ही होता जा रहा था। हम चाह कर भी कुछ नहीं कर पा रहे थे।

ऐसा भी नहीं था कि हम हर वक्त गुलशन को भूले ही रहते थे। हमारी उम्मीदें उससे थीं। उससे भी बढ कर माँ पिताजी का सबसे दुलारा था मेरा भाई। मेरा सूर्य। बहन की तो जान गुलशन में बसती थी। हम हर वक्त उसका ख्याल रखते पर न जाने किस वक्त उसे भूल जाते।

शुरू-शुरू में हम सबका गुलशन को भूलना अलग अलग और कभी कभी होता था। जैसे मैं गुलशन की उपस्थिति को भूलता तो कोई और उसकी याद दिला देता कि, वह देखो, वहाँ बैठा पढ़ रहा है। गुलशन इतना ज्यादा पढ़ता था कि, मुझे याद है, वह घंटे दो घंटे के लिए आखिरी बार उस कोने दिवाली के एक दिन पहले हटा था, जब घर के जाले साफ किए गए थे।

फिर भी, गुलशन को भूलना खाने पीने तक तथा सोते समय अक्सर ही बत्ती बुझा देने तक ही सीमित रहता तो गनीमत थी। पर अब हम उसे पहले की तरह दो चार दस पंद्रह मिनट के लिए नहीं बल्कि कई कई दिनों तक भूलने लगे थे।

पहली बार गुलशन को लंबे समय तक भूले रहने का अंदाजा हमें उसके नाम से आए प्रवेशपत्र से हुआ था। देश के प्रतिष्ठित इंजीनियरिंग कालेज की प्रवेश परीक्षा के लिए यह प्रवेशपत्र आया था। प्रवेशपत्र देख कर हमें यह ख्याल आया और सबसे पहले यह ख्याल माँ को ही आया था कि 'मैं भी सोच रही थी उस दिन जनगणना वालों के सामने कौन सा नाम छूट रहा था?' माँ फिर भाई को बाँहों मे लेकर बहुत देर तक रोती रही थी।

जिस दिन जनगणना करने वाले लोग हमारे घर आए तो सबसे पहले उन लोगों ने मकान नंबर पूछा था। घर के सदस्यों की बाबत घर के मुखिया के रूप में पिताजी का नाम, माँ का नाम, मेरा नाम तथा छोटी बहन का नाम बताया गया था। साथ में उम्र भी लिखवाई गई थी।

एक हाथ में प्रवेशपत्र थामे, दूसरे हाथ से गुलशन को अपने अँकवार भरे, माँ का रोना रुक ही नहीं रहा था। चुप लगाती थी फिर तुरंत ही रोने लगती थी। और अहक अहक कर रोती रही थी।

पिताजी भी बहुत देर तक छत की तरफ देखते हुए न मालूम क्या सोचते रहे थे। फिर कुछ देर तक 'हाँ' में सर डुलाते थे। गुलशन के पास जाकर उसके बालों में उँगलियाँ फिराने लगे थे, माँ से कहे थे - इसके सिर में रोज तेल डाल दिया करो, इतनी कम रोशनी यहाँ पहुँचती है - यह भी कहा था कि - अगले महीने, न हो तो, एक बल्ब इधर

भी लगवा देंगे। बल्ब होल्डर और तार लेकर कितना खर्चा आएगा - पिताजी ने मुझे पता करने के लिए कहा था। इस घटना से हम बुरी तरह डर गए थे।

'ऐसा क्यों हो रहा था' - के कारणों का हम ठीक ठीक कभी पता नहीं लगा पाए। अब तो हम सबने तमाम कारण इकट्ठे कर लिए हैं और जब जैसा मौका आता है हम उस हिसाब से उन कारणों में से किसी एक को अपने मन से बाहर लाकर उन पर सोचने लगते हैं। उस वक्त बाकी बचे कारणों को हम अपने भीतर ही कहीं दबाए रखते हैं।

गुलशन को भूलते जाने का जो सर्वाधिक तसल्ली देने वाला कारण था वह यह कि घर के जिस कोने में उसने खुद को अपनी किताबों समेत जमा रखा था वह घर सबसे अंधियारा कोना था। दूसरे कोने को घेर कर रसोईघर बनाया गया था और कमरे का बल्ब भी उसी कोने में था। तीसरे और चौथे कोने में दो दरवाजे थे - एक बाथरूम की तरफ तो दूसरा बाहर की तरफ खुलता था। इस तरह गुलशन सर्वाधिक अँधेरे में था।

दूसरा कारण ये कि हम उसे इसलिए भूलने लगे थे क्योंकि उसने बोलना-चालना और कोई हस्तक्षेप करना बिल्कुल ही छोड़ दिया था।

या इसलिए कि हम निश्चिंत थे कि वह जो कुछ कर रहा था, हमारे मन की कर रहा था।

या फिर हम अपने अपने काम करने में तो व्यस्त रहते ही थे, उसके इतर भी हम हमेशा कुछ ज्यादा करने की सोचते थे - पिताजी सिनेमा की टिकटें ब्लैक करने की सोचते रहते थे, माँ बर्तन-पोंछा के लिए दूसरे घर तलाशती रहती थी और मैं और सीमा नींद मे तनख्वाह पा रहे थे।

हम हद से ज्यादा व्यस्त थे।

या फिर मुझे लगता है कि हमें ही कुछ हो गया था। हम किसी अनवरत शोर के शिकार हो गए थे, जो हमें अतिरिक्त कुछ भी सुनने नहीं देता था। ठीक इसी तरह दृश्यों का भी घमासान हमारे भीतर मचा होता था।

इस 'कुछ हो जाने' को पहली बार मैंने कक्षा तीन में जाना था। आठ नौ साल का रहा होऊँगा। शनिवार के दिन विद्यालय के सभी लड़के लड़कियाँ बीस कतारों में खड़े होकर सामूहिक पी.टी.(शारीरिक शिक्षा) कर अभ्यास करते थे। उस दिन भी पी.टी. वाले आचार्य जी ने कहा था – एक - और सबके साथ मैंने भी अपने हाथ डैने की तरह फैला दिए थे, कहा दो-सबने हाथ ऊपर करके ताली बजाई, कहा - तीन...

मेरे पास तीन कहने की बस धुन ही पहुँच पाई थी - ई ई न की तरह। चार कहने की भी बस धुन ही आई थी। तीन और चार सुनने की जगह पर मैं शायद बादलों में प्रतिभा को देखने लगा था जिससे मैं उतनी छोटी उम्र में ही बहुत प्यार करता था और वह उस दिन विद्यालय नहीं आई थी, या फिर अगले महीने मिलने वाली छात्रवृत्ति के बारे में सोचने लगा था - और कुछ ही पलों बाद मैं जमीन पर छितराया हुआ मिला।

मेरे हाथ दो की आवाज के अनुसार ऊपर ही टँगे रह गए थे जबकि बाकी सभी लड़के लड़कियों ने 'तीन चार' के बाद अपना हाथ 'विश्राम' में कर लिया था। मेरा ध्यान पी.टी. वाले आचार्य जी के झापड़ से लौटा था, जो मेरे बेख्याली में मुझे धराशायी कर गया था, होंठ कट गए थे, मुँह मे बलुई मिट्टी भर गई थी। अब भी कभी कभी मेरा मुँह बालू बालू हो जाता है। थू थू आथू च्च, ओह आयू। बाद में पी.टी. वाले आचार्य जी ने मुझे बताया कि लग रहा था, तुम कहीं खो गए थे। लग रहा था मेरे भीतर कोई भूलभुलैया थी।

फिर तो बचपन से ही लगता रहा है कि मैं हरदम ही खोया-वोया रहता हूँ। इस बात की तरफ मैंने गौर करना शुरु किया तो देखा कि जो जितना मेरे जैसा है उतना ही खोया रहता है। और, सोचिए, ऐसा तब जब मैं पागल भी नहीं हूँ।

धीरे धीरे ही सही पर मैं अपने आपको यह समझाता रहा हूँ कि यह खोया रहना और कुछ नहीं एक अनवरत संवाद है। मेरे भीतर बैठा कोई है जो मेरी नाकामियों पर चीखता है, बिलखता है, मैं उसे अपने सपनों का उल्लास सुनाता हूँ। वह, भीतरवाला, मेरी कमियों पर चिल्लाता है मुझे डाँटता है, मेरी बर्बादियों पर रोता है, मैं उसे कुछ कर दिखाने की बेचैनी में शामिल करता हूँ। पहले, बहुत पहले, एक बड़ी दूर से आती पुकार भी थी, शायद प्रतिभा की, आठ नौ साल की प्रतिभा। अब उस पुकार की जगह बेरोजगारी के नगाड़े बजते हैं। घम घम घम। घम घम। घम।

मैं हमेशा बुदबुदाते रहता हूँ - ये तो, खैर, दूसरों का मानना है।

इतना ही नहीं, अब तो मेरे भीतर अदृश्य दृश्यों का भीषण घमासान भी है, जो मुझे बाहर कुछ भी देखने नहीं देता। मुझे याद है, उस दिन मैं पढ़ाने जा रहा था, साइकिल पर आगे शालू बैठी थी, कि मुझे सड़क से सटी वह दीवाल दिखी थी, मुझे ये भी लगा था कि मैं दीवाल में जाकर लड़ जाऊँगा, फिर कुछ पलों के भीतर ही वह दीवाल मेरे जेहन से गायब हो गई और मैं तुरंत ही दीवाल में लड़ गया था। शालू को बहुत चोट आई थी।

सामने से कोई गाड़ी गुजर जाए तो मुझे यही लगता है कि धूप के रंग पर कोई काली परछाईं गुजरी होगी। अगर गुजरी होगी, तो।

आलम यह है कि बियावान मे भी आपसे बातें करूँ तो भी भीतर की सतत चीख कुछ भी सुनने नहीं देती, तथा आपकी बातें सुनने के लिए मुझे आपकी तरफ झुकना पड़ेगा, 'क्या कहा?' वाले अंदाज में अपने कानों के पास हाथ लगाना पड़ेगा।

रही बात देखने पहचानने की, तो औरों को छोड़ दीजिए, अपनी बिटिया रानी शालू को भी मैं नीले उजले फूल वाले हल्के पीले रंग के फ्राक और छोटी छोटी चोटियों से ही अंदेशा लगाता हूँ कि ये बच्ची शालू ही होनी चाहिए।

जनगणना वाले हादसे के बाद बहुत दिनों तक हम परेशान और गुमसुम रहे थे। खुद से ग्लानि होती रही थी और दूसरों से आँख मिलाने में भी शर्माने लगे थे इस घटना से हदस कर हम सबने फिर से गुलशन के पल पल पर नजर रखना शुरू कर दिया था।

तब तक गुलशन एक परीक्षा दे चुका था और शायद उसे अपने पिछड़ने का एहसास हुआ होगा क्योंकि उन्हीं दिनों माँ ने बताया था कि गुलशन किसी कोचिंग का नाम ले रहा है। जब हमने कोचिंग संस्थानों में फीस के मालूमात किए तो फीस इतनी ज्यादा थी कि हमें भाई को यह समझाना पड़ा कि कोचिंग-वोचिंग तो इस दौर के झमेले हैं, क्या आज से पहले सफल लोग नहीं हुए, तुम, बस, पढ़ते जाओ।

हमने देखा कि गुलशन न जाने क्यों दीवार की तरफ मुँह करके पढ़ाई करने लगा था। मैंने माँ को समझाया था कि दीवार की तरफ मुँह करके पढ़ाई करने से हो सकता है याद करने में सुविधा होती होगी और इसमें ऐसी कोई बात नहीं थी कि गुलशन नाराज होकर हमसे बदला लेने की कोशिश कर रहा था।

तो भी भाई की पढ़ाई लिखाई में कोई कमी नहीं थी। एक इंजीनियरिंग कालेज में नहीं तो दूसरे में उसका प्रवेश हो ही जाना था। हम हर पल उसका ख्याल रखने लगे थे। बहन की नौकरी की तलाश अभी जारी थी। मेरे ट्यूशन चल रहे थे। पिताजी भी अच्छी खासी संख्या में टिकटें ब्लैक कर रहे थे। माँ बर्तन पोंछे के लिए दो अन्य घरों में जाने लगी थी। मुझे इसी बात का डर था कि हमारे दिन अच्छे गुजरने लगे थे।

आप बड़े लोग हैं, इस बात को ऐसे समझिए - मान लीजिए आपके शहर में बिजली कटौती का समय आठ से बारह है। ऐसे में अगर किसी दिन बिजली निर्धारित समय पर नहीं जाती है तो आपके शहर में जो मेरे जैसे लोग होंगें, वे इस बात से डरेंगे कि अब

अगर बिजली गई तो लंबे समय के लिए जाएगी। समझे। मैं आशंकित रहता था। हमेशा।

यही वे दिन थे जब अक्षयवर चाचा के रिक्शे के टायर बोल जाने की घटना घटी थी। उन दिनों शहर में चारों तरफ (और देश भर में भी) आतंकवाद और आतंकवादियों चर्चा सूचनातंत्र पर छाईं रहने लगी थी। शुरुआत में तो हमने आंतकवाद का हँसी मजाक बनाया क्योंकि हमारे मुहल्ले में किसी ने कभी आतंकवादी नहीं देखा था। पर धीरे धीरे यह सब कुछ खौफ में बदलने लगा था। अगर एक पहर सरकारी पानी नहीं आता तो हमें यही लगता था कि कल का अखबार पानी टंकी उड़ाए जाने की खबर छापेगा। कुछ ही दिनों पहले घटी अक्षयवर चाचा के रिक्शे वाली घटना में पुलिस के हस्तक्षेप ने हमारे डर को बढा दिया था।

दूसरे इस शहर का जो थोड़ा बहुत ऐतिहासिक महत्व था, मंदिरों-वंदिरों के कारण। एक खास तबके के लिए तो इन्हीं कारणों से इस शहर का बहुत महत्व था, तो उस ऐतिहासिक महत्व को देखते हुए सरकार ने अपने सबसे दबंग पुलिस अधिकारी को इस शहर का नया एस.पी. नियुक्त किया था।

शहर के नए एस.पी. ने अपना कार्यालय सँभालते ही अपराध और आतंकवाद पर काबू पाने के लिए कुछ नए और बेढंगे नियमों का ऐलान किया था - तीन और तीन से ज्यादा लोग एक साथ न खड़े हो - हरेक पुलिसकर्मी को रोजाना कम से कम एक अपराधी पकड़ कर देना है - प्रत्येक प्रतिष्ठित एवं बड़ी दुकानों तथा निजी संस्थानो को प्रशिक्षित गार्ड रखने हैं, जो हथियारों से लैस हों।

इन नियमों से हमारा कुछ भी लेना देना नहीं था तो भी बेहद डर गए थे। पुलिस से तो हम गली के लोग ऐसे ही थरथराते थे, अब ये नए नियम भी थे। पुलिस शब्द सुनते ही मुझे तरंगो जैसी खूब ऊँची और खूब नीची ढलानों वाली, मिट्टी की सड़क याद आ जाती है। एक बच्चा अकेले विद्यालय जा रहा है। आसपास दूर दूर तक कोई नहीं दिखता है, बहुत दूर दो यूकिलिप्टस के पेड़ हैं। बिल्कुल निराँव। लड़का अभी सड़क की ढलानों में पहुँचा ही है कि पीछे से उसे पुलिस के दो लोग, साइकिल से ढलान उतरते दिखते हैं।

मेरा गला रुँध गया था। मैंने नहीं रोने के लिए होंठ भींच लिए थे, फिर भी आँखों में पानी भर गया था। पुलिस के लोग नजदीक आ रहे थे। मैं जहाँ था, वहीं खड़ा हो गया था, और दूसरी तरफ देखने लगा था। जैसे ही पुलिस के लोग मेरे करीब से गुजरे, मैंने

उन्हें हाथ जोड़ कर नमस्ते कहा था। वे बस मुस्कराए थे और एक दूसरे से बात करते हुए चले गए थे।

कुछ ही दिनों बाद, मुझे याद है, एक दिन पिताजी देर तक सोते रहे थे और उस दिन सीमा को अपने पैरों पर चढ़ाए हुए थे। माँ को भी आश्चर्य हुआ था, आज ये सिनेमा हाल क्यों नहीं जा रहे हैं? पिताजी दिन भर सोते रहे थे, शाम को बताया था, अब 'बहादुर सेक्योरिटी फोर्स' के प्रशिक्षित गार्ड सरस्वती सिनेमा की दरबानी सँभालेंगे।

वह कोई मुख्यमंत्री का करीबी था जो 'बहादुर सेक्योरिटी फोर्स' का मालिक था। वह अपने निजी फोर्स में उन लोगों को भर्ती करता था जो गाँव देहात के थे और सिपाही, मिलिट्री के प्रशिक्षण की तैयारियों के बाद असफल हो गए होते थे। उसी ने ऊपर से एस.पी. पर दबाव बनवाया था। इसी आतंकवाद के बहाने वह सभी दुकानों पर अपने सेक्योरिटी गार्ड्स रखना चाहता था।

उन दिनों पिताजी की दरबानी छूट जाने के बाद मुझे इस बात पर आश्चर्य हुआ था कि क्या मैं ज्योतिषी हूँ, 'कुछ बुरा ही होगा' वाली मेरी आशंका हमेशा ही सच हो जाया करती थी। तो भी पिताजी के दरबानी छूटने का हमने ज्यादा शोक नहीं मनाया क्योंकि शोक मनाने के लिए जरूरी दोनों ही चीजें हमारे पास नहीं थीं - पैसा और समय। अपनी नौकरी छूटने के बाबत पिताजी ने हमें यही समझाया - जान लो, कि अगर तकलीफों की कोई सीमा होती होगी तो उस सीमा के आखिरी छोर पर हम पहुँच चुके हैं, और यहाँ से हमारे बढ़िया दिन शुरु होंगे।

काम छूटने के दो तीन दिन बाद से ही पिताजी मंडुआडीह वाली गुलाममंडी में जाने लगे थे। शहर के दूर दराज क्षेत्रों एवं गाँवों से रोज यहाँ सैकड़ों लोग जमा होते थे। यहाँ काम मिल जाने पर एक दिन के पचास रुपए तो मिलते ही थे। काम भी दिहाड़ी की तरह का होता था। यहाँ दिक्कत यह थी कि रोज काम नहीं मिलता था, जबकि मेरे पिताजी अपने और मेरे सारे कपड़े पहन कर जाते थे ताकि वे खूब मोटे दिखें और तुरंत कोई उन्हें अपने काम के लिए 'पकड़' कर ले जाए।

मुझे याद है, एक बार उन गर्मियों में इतने कपड़े पहन कर गुलाममंडी जाने बावजूद एक हफ्ते तक कोई काम नहीं मिला था तो पिताजी ने, औरों की तरह, उस दलाल से बात किया था जो दिन के अंतराल पर काम दिलाता था और एवज में बीस रुपए लेता था। पर काम तो करना था।

पिताजी के पैरों की तकलीफ और काम करने की जद्दोजहद को देख कर मैं सोचता था कि मैं भी तो पिताजी के साथ गुलाममंडी जा सकता हूँ पर मैं इतना नीच था कि मुझे शर्म आती थी और मेरे ट्यूशन भी चल ही रहे थे। पिताजी की तकलीफ देख कर जब मैं जितना ही उन रेलगाड़ी के आगे गैस बत्ती लेकर दौड़ते हुए पाता। रेलगाड़ी के आगे दौड़ता हुआ 'मैं' जब नौकरियों के बारे में सोचते हुए 'मैं' को देख कर मुस्कराता था तो पूरी गैस बत्ती हिलने लगती थी। दौड़ते हुए मेरी काली पैंट चमकती रहती थी।

हम सबकी चिंता पिताजी के काम मिलने को लेकर तो बहुत होती ही थी पर हमें इस बात का बेहद डर भी सुबह से शाम तक बना रहता था कि गुलाममंडी में भीड़ होती थी। पूरा मुहल्ला उन दिनों भीड़ में फँसने से डरता रहा था।

हमारा डर शहर में लगे उस नए कानून से उपजा था, कि, तीन से ज्यादा लोग एक साथ नहीं खड़े हो सकते हैं। एक तो शहर की निगाह में हमारा दर्जा भी ऊँचा नहीं था और दूसरे गुलाम मंडी की भीड़। हम सभी अपने कामधाम करते रहते थे और साथ में पिताजी तथा आतंकवाद का ख्याल भी दिनों रात मन में रहने लगा था। हम हरेक शाम पिताजी को घर लौटा देख कर ही आतंकवाद के ख्याल को कुछ देर के लिए अपने मन से टाल पाते थे।

हमारे मुहल्ले तथा विशेषकर, हमारी गली के लोगों की धरपकड़ बढ़ गई थी। इससे डर कई गुना बढ़ जाया करता था।

एक दिन जब पिताजी के आने में जब बहुत देर हो गई थी तो मुहल्ले के लोगों ने समझाया था कि 'डरने की कोई बात नहीं है, हम लोग हैं न, बस, एकबार जाकर मंडुआडीह थाने में देख लो।'

मुझे याद है पिताजी रथयात्रा चौमुहानी पर एक मूँगफली वाले की टोकरी में से मूँगफली निकाल कर खाते हुए मिल गए थे। नजदीक से देखा तो थोड़ा आश्चर्य हुआ था कि वह सुमेर चाचा थे। पिताजी के साथ ही सिनेमाहाल की नौकरी से निकाले गए थे, फिर यह मूँगफली का काम शुरु किया था। मेरे साथ जो गली के लोग थे उन्होंने पिताजी को भला बुरा कहा था और समय पर घर आने की हिदायत दी थी।

पिताजी और आतंकवाद से जुड़ा डर हमारे मन में उन दिनों भी रहने लगा था जिस दिन पिताजी काम पर नहीं जाते थे या काम नहीं मिला होता था। उन दिनों यह डर एक आदत की तरह हममें बस चुका था।

मुझे याद है, उस दिन भी पिताजी घर पर ही थे और मई आखिर की डरावनी दोपहर थी। उस दिन की गर्मी तो आज तक जस की तस याद है। बहुत लू चल रही थी। लू इतनी सूखी और तेज थी कि उस दिन दोपहर में मैं जब सोकर उठा था तो मुझे साँस लेने में परेशानी हो रही थी। बाकी लोग भी ऊँघ रहे थे।

साँस लेने वाली परेशानी से बचने के लिए मैं घड़े से पानी निकाल रहा था कि लगा था, पीछे से परछाईं गुजरी है। मैंने सबकी तरफ देखा था और परछाईं गुजरने की सोच कर बुरी तरह डर गया था। मेरे पीछे मुड़ कर देखने से पहले ही बाथरूम का दरवाजा बंद हो गया था। किसी अजनबी की बाबत सोचते ही मैं चीखने लगा था, मुझे याद है।

मुझे याद है घर में सब झटके में जगे थे। माँ और बहन झटके में जगी थीं। पिताजी ने बाथरूम के दरवाजे को धक्का दिया था और उसे भीतर से बंद पाकर वहाँ से भागे थे। मुझे पूरी तरह याद है, पिताजी को मैंने उतना बदहवास कभी नहीं देखा था। पिताजी चीख रहे थे। दूर हटो, दूर हटो वहाँ से, बम रखा होगा, बीच बीच में पड़ोसियों को पुकारते रहे थे। हम सभी एक दूसरे को पकड़े हुए, रो रहे थे, चीख रहे थे।

दो मिनट भी नहीं लगे होंगे, बहुत बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई थी और उस भीड़ ने हमारे बाथरूम को घेर लिया था। उन सबों पर पिताजी के 'दूर हटो' और 'बम रखा होगा' का कोई असर नहीं हुआ था। भीड़ आतंकवाद के खिलाफ नारे लगा रही थी। आतंकवाद के खिलाफ लगते नारे 'पाकिस्तान हाय हाय' में बदल गए थे।

उस भीड़ में सौ सवा सौ लोग रहे होंगे। हम धक्कामुक्की में घर से बाहर कर दिए गए थे। उन लोगों ने बाथरूम का दरवाजा बाहर से भी बंद कर दिया था। नारों के शोर से पूरा मुहल्ला गूँजने लगा था। लोग दरवाजा पीट रहे थे। वह चीख अब भी सुनाई देती है। मेरा घर ठसाठस भर चुका था।

भीड़ कुछ कर पाती इससे पहले सीढ़ी चढ़ते पुलिस के लोग हमें दिखे थे। ये यहीं चौराहे पर वसूली के लिए तैनात किए जाते थे। पुलिस के लोगों को देखते ही हम परेशान हो गए, मुझे वह बच्चा याद आ गया था, मिट्टी की सड़क की ढलानों में पुलिस के लोगों को नमस्कार करता हुआ। मुझे पूरी तरह याद है और हमेशा याद रहेगा कि पुलिस के लोगों को देखते ही हम सबको - पिताजी, माँ, मैं, बहन को गुलशन की याद आई थी। फिर तो हम सब चौंक पडे थे।

मैं किसी तरह जगह बनाकर भीतर गया था तो सचमुच गुलशन जगह पर नहीं था, उसकी जगह को तमाम अन्य लोगों ने कब्जे में ले लिया था, उसकी किताबों पर लोग चढ़े हुए थे और रह रह कर बीच बीच में नारे लगा रहे थे।

और फिर तो हम बर्बाद हो गए। तो, बाथरूम में गुलशन था। एक बार फिर हम अपनी नामालून तकलीफों, बेतरतीब सी खोए रहने की बीमारी में पड़ कर गुलशन को भूल चुके थे। मुझे माँ को कुछ भी बताना नहीं पड़ा था। वह थसक कर जमीन पर बैठ चुकी थी। पिताजी ने सिर से हाथ लगा लिया था। और बहन, उसकी तो अब बस इतनी ही याद बाकी है कि वह कभी माँ को कभी पिताजी को देखती रही थी।

मैं अपने आप से इतना अपमानित हुआ था कि गुस्से में आ गया था। भीड़ को ठेलता ठालता, कूदता फाँदता बाथरूम के पास किसी तरह पहुँचा था। मैंने लोगों से अपने अपने काम पर चले जाने को कहा था, बताया था कि अंदर कोई आतंकी-वातंकी नहीं मेरा भाई गुलशन है, चूँकि हम तुरंत सोकर उठे थे, इसलिए गुलशन का ख्याल ही ध्यान से उतर गया था।

इसके बाद तो जो कुछ हुआ उसके लिए मैं अपने उस हिस्से को कभी माफ नहीं कर पाया, जो हिस्सा दिन रात नौकरियों की बात सोचा करता था, भाई से भी पैसे पैसे की सोच रखता था, असफलता को सफलता में बदलने की बात सोचता रहता था, प्रेम की बाबत सोचता रहता था। वह मेरा नकारा हिस्सा था। पता नहीं माँ और पिताजी ने अपने आप को कौन सी सजा दी होगी? बहन तो, खैर, अब रही नहीं। उसे सिरदर्द होता था, जब थी।

मेरे यह बता देने पर कि अंदर बाथरूम में मेरा भाई है, उस भीड़ का एक हिस्सा तो मेरे पक्ष में आया था, पर एक बड़ा हिस्सा न जाने कैसे यह मान बैठा था कि जो भीतर था वो आतंकवादी था, भले ही वह गुलशन क्यों न हो।

भीड़ के उस हिस्से ने मुझे दीवार में दबा दिया था। यहाँ से झिलमिलाहटों में दिखती मेरी माँ को न जाने क्या हो चुका था, लोग चीख रहे थे।

खिलाफ भीड़ का वह हिस्सा जो मानता था कि मेरा भाई बहुत खूबसूरत है, उसके लोग बाथरूम के छत तथा रौशनदान पर चढ़ गए थे। बाथरूम के तमाम छोटे मोटे छेदों को इस भीड़ ने मूँद दिया था। भीड़ के इस हिस्से को लग रहा था कि मेरा भाई इतना खूबसूरत था कि जरूर ही उसे बचाने के लिए सभी देवता अपने रथों पर चले आ रहे थे।

बाथरूम के छत पर, रौशनदान पर चढ़ कर ये लोग देवताओं से युद्ध की तैयारी कर रहे थे।

भीड़ के जिस हिस्से को लगा था कि सभी आतंकवादी संगठन मेरे भाई को बचाने आने वाले थे उन लोगों ने लाठी डंडे से लैस होकर पूरे मुहल्ले को घेर लिया था। इन लोगों के समूचे शहर में फैल जाने की उम्मीद थी।

पर पुलिस के लोगों के बाथरूम के पास पहुँचते ही ये लोग ठंडे पड़ने लगे थे। पुलिस के लोगों ने हमें बहुत गालियाँ दी थीं। मेरी माँ और पिताजी को सबसे अधिक गाली। अपने बेटे को भूल जाते हो, साले। घर में आतंकवादी पालते हो और पकड़ में आने पर बेटा बना लेते हो। जबकि कसम से, मैं बता दूँ, मेरा भाई आतंकवादी नहीं था। हम सभी, पुलिस के लोगों के सामने गिड़गिड़ाने लगे थे। वे लोग भी, जो थोड़ी देर के लिए खिलाफ हुए थे।

बहुत देर तक रोने धोने के बाद भी पुलिस के लोगों ने मेरे भाई को नहीं छोडा। मुझे याद है, बाथरूम से मेरे भाई को उन लोगों ने खींच कर निकाला था। उस समय गुलशन हम सबको देखता रह गया था। पुलिस के लोग जाते जाते यह जरूर बता गए थे कि उनके साथ भी रोज एक अपराधी पकड़ने वाली मजबूरी थी।

उस दिन जब जब मैं माँ को देखता था मुझे विश्वास हो पाता था कि मेरा भाई आतंकवादी नहीं था। वरना दिन भर और घड़ी भर रात तक मुहल्ले के जितने भी लोग आए थे वे लोग इतने आश्वस्त थे कि औपचारिकताओं के बाद ऐसे ही सवाल पूछते रहे थे - किस संगठन से जुड़ा था - हिंदू होकर ऐसा काम... थोड़ा गलत लगता है - या फिर, देख लीजिए घर में कहीं हथियार तो नहीं छुपा रखा है।

कई लोगों ने यह भी बताया कि अगले दिन यह खबर अखबार के किस पन्ने पर आएगी। अगर कुछ और भी घटता है तो पहले पन्ने पर आ जाएगी। लोग यह भी बता रहे थे कि टी.वी. के किस किस चैनल पर यह खबर प्रसारित हो रही थी। मैं इस कदर बदहवास हो चुका था कि मुझे अगले दिन का अखबार दिखने लगा था, जिसमें चौथे पन्ने पर 'धायँ' लिखा था। या बहुत हुआ तो 'धायँ, धायँ' पिताजी और बहन भी अखबार का वही पन्ना पढ़ रहे थे।

पर माँ की बात दूसरी थी। उसने इतना ही किया था कि आस नहीं छोड़ी थी। शुरुआत में जो भी आया था उसके सामने माँ दहाड़ मार कर रोने लगी थी, रोना उसे उम्मीद की किसी सूरत की तरह लगा होगा। पर इनमें से कुछ ने सांत्वना दी थी - इन लोगों का

कहना था कि बेटा था तो रोने में कोई हर्ज नहीं है, लेकिन इतना नहीं रोना चाहिए, हम तो भारत माता के लिए अपने सभी बेटों की बलि चढा दें, देशभक्त होता तो रोने के कोई मायने भी होते, आतंकवादी फातंकवादी, चोर चिकार के लिए इतना रोना, सँभालिए अपने आपको।

माँ को कैसा लगा होगा?

माँ ने अपने बेटे के लिए चोर चिकार शब्द सुना और रोना बंद कर दिया था। उसके बाद तो घर में कोई भी आया, माँ उससे मिलने नहीं आई। कोई दिख गया तो मुस्करा कर इधर उधर हो जाती थी। मुझे याद है, लगातार सात आठ घंटो तक माँ या तो बाथरूम जाती रही थी या उल्टी तरफ घूम कर खाना बनाने वाली जगह पर पोंछा लगाती रही थी।

उस दिन जितनी बार माँ बाथरूम गई थी, आधे घंटे से अधिक रही थी, मुझे याद है, बाथरूम से आते ही घर का वह वाला हिस्सा पोछने लगती थी, एक बर्तन को हटाती थी उसके नीचे की जमीन पोंछ कर बर्तन रख देती थी, फिर तुरंत ही वही बर्तन उठा लेती थी, फिर पोंछती थी।

घर में बाहरी लोग लगातार आते रहे थे पर मेरा ध्यान माँ की तरफ वास्तव में तब गया था जब मैंने देखा कि माँ ने बर्तन को हवा में उठा रखा था, पोंछा जमीन पर पड़ा हुआ था और एक हाथ से साड़ी के किनारे में अपने चेहरे को थामे सर को घुटने पर टिकाए थी। मुझे याद है, पिताजी और बहन भी माँ को देख रहे थे।

तब मुझे लगा था कि माँ रो रही थी। अपने ही घर में, अपने ही बेटे के लिए माँ छुप छुप कर रो रही थी। उसे खुल कर रोने भी नहीं दिया जा रहा था। वह बाथरूम जा रही थी और उल्टी तरफ घूम कर पोंछा लगा रही थी तो सिर्फ इसलिए कि उसे रोने की जगह चाहिए थी। वह भी सात आठ घंटे से लगातार। यह सोच कर तो मुझे न जाने क्या हो गया था कि क्या माँ ने यह मान लिया था कि चोर की माँ को छुप छुप कर ही रोना चाहिए - फिर तो मैंने घर में घुस आए लोगों को अप्रत्यक्ष गालियाँ देकर भगा दिया था।

अब भी मुझे नहीं लगता कि अगर माँ की हालत बिगड़ी नहीं होती तो हम कुछ भी कर पाए होते। उस छुप कर रोने के दरमियान मैंने माँ का चेहरा सिर्फ एक बार देखा था और बेचैन हो गया था। उसी बेचैनी में मैंने पिताजी से कहा था कि वह एक बार सिनेमाहाल वाले मालिक से मिले और न हो तो उन्हें लेकर भेलूपुर थाने पर चलें। मैं

भी उन कुछ परिवारों के लोगों को साथ लाया था, जहाँ मैं ट्यूशन पढ़ाता था। एक ने तो किसी बड़ी हस्ती से फोन करवाने की भी बात कही थी।

आठ नौ बजे ही हम थाने पहुँच गए थे, पर हमे साढ़े ग्यारह बजे तक थाना इंचार्ज का इंतजार करना पड़ा था। माँ वहाँ पहले से मौजूद थी और उसके साथ एक महिला भी थी। वह राय साहब की औरत थी और माँ उनके घर बर्तन पोछें के लिए जाती थी। राय साहब बहुत बड़े नेता थे और उनकी औरत जरूर माँ का रोना देखकर ही थाने पर आने के लिए तैयार हुई होगी।

मुझे याद है, दो गुणे दो फीट के बंदीगृह में मेरा भाई बंद था। थाना इंचार्ज के आने तक माँ उस बंदीगृह के बाहर बैठी रही थी और गुलशन का हाथ अपने हाथ में लिए रही थी। रोई भी रही होगी।

थाना इंचार्ज ने राय साहब की औरत को देखते ही 'आप' कहा था। वह नहीं आई होती तो भी हो सकता था कि मेरा भाई छोड़ दिया जाता। और भी बहुत लोग आए थे। हमारे मुहल्ले के ही कई लोग थे। पर अगर वह नहीं आई होती तो हमें यह कभी नहीं पता चल पाता कि गुलशन गुलफाम हो चुका था और मंदिर हमले का मुख्य अभियुक्त था।

हमारे लिए यह आश्चर्य से कम नहीं था कि भाई को हमने छुड़ा लिया था। राय साहब की औरत इंचार्ज को 'तुम तुम' कहती रही थी। उन्होंने जब अपने राय साहब से थाना इंचार्ज की बात कराई थी तो थाना इंचार्ज डर गए थे। 'इसमें फोन करने की क्या जरूरत है' कहते रहे थे। जब हम आने लगे थे तो थाना इंचार्ज ने अपनी जेब से **(**बताया था**)** कुछ पैसे भी दिए थे, यह कहते हुए कि इसके सिर में चोट आ गई है, साला कुछ बोल नहीं रहा था, नाम तक तो बड़ी मुश्किल से बताया। भाई के सिर का पिछला हिस्सा, थोड़ा, कट गया था। थोड़ा 'थोड़ा' सबने कहा था। मेरा भाई चल नहीं पा रहा था और न जाने कब तक कराहता रहा था।

मुझे भूलने की बीमारी जरूर है पर मैं वह सब नहीं भूलता हूँ, जिसे सचमुच में भूल जाना चाहता हूँ। जैसे ये घटनाएँ। मेरे जेहन में ये सब इतना क्रमवार घटता है कि इन्हें एक पल के लिए बुरा सपना भी नहीं मान पाता हूँ। इतनी राहत जरूर है कि कभी कभार मुझे ये सारी घटनाएँ अविश्वसनीय लगने लगती हैं।

अविश्वसनीय लगने में यह होता है कि जैसे ये सब हमारे साथ नहीं हुआ। जैसे गुलशन तो सही सलामत है। ये सारा कुछ किसी दूसरे परिवार में घटा और हमने इसे, बस देखा था। कभी कभी तो ये सब इतना झूठा जान पडता है कि लगता है हमने इसे

कहीं से सुन लिया होगा। वरना आपके पास लाख तकलीफें हों, सपने हों, उम्मीदें हों, चाहें खुद में कितना भी न खोए रहते हो यह तो मुश्किल ही है कि कोई अपने भाई को भूल जाएगा, कोई अपने बेटे को भूल जाएगा। पर ये अच्छे ख्याल कभी कभी आते हैं। जबकि सच्ची बातें हमें हमेशा मथती रहती हैं।

इन घटनाओं के ख्याल से भी अब मुझे इतना डर लगने लगा है कि अब इनकी याद आते ही मैं सचेत रूप से सोचने लगता हूँ कि ये जो 'मैं' था, वह मैं नहीं हूँ। ये जो गुलशन है, कोई और गुलशन था, मेरा भाई गुलशन नहीं। माँ भी कोई दूसरी, पिताजी भी दूसरे। और हाँ याद आया, मैं ने उसके बारे में अब तक आपको कुछ बताया ही नहीं कि जो 'बहन' थी, कोई और थी जिसे सिरदर्द होता था और सिर दर्द से लड़ते हुए अपना सिर प्लास्टिक की रस्सी से बाँधे रहती थी।

पिताजी तो वाकई उसी दिन से बिल्कुल दूसरे हो गए थे जिस दिन हम भाई को छुड़ाकर घर ले गए थे। अगले दिन से वे कभी काम पर नहीं गए। बिस्तर से उठते ही थसक कर बैठ जाते थे। कहते थे - पैरों में बहुत दर्द रहने लगा है। 'शहर नहीं छोड़ना पड़े' के शुरूआती संघर्ष में मैंने दो नए ट्यूशन जरूर ढूँढ़ लिए थे पर वे काफी नहीं थे।

भाई पहले अंधा हुआ था और बहरापन उसे बाद में आया। ऐसा धीरे धीरे हुआ था। इसके अंधेपन के शुरूआती दिनों में हमने महसूस किया था कि वह हमें हमारी आवाज से पहचानने की कोशिश करने लगा था। किसी भी परीक्षा में पास नहीं हो पाया। यह बताना थोड़ा मुश्किल है कि उसे यह अंधापन सर पर लगी चोट से आया था या दिन-रात घर के अंधियारे कोने में पढ़ते रहने से।

गुलशन को उपयोग में लाने की मेरी आखिरी कोशिश भी नाकाम रही थी। उसके बीमारी के शुरूआती दिनों में मैंने विकलांगता प्रमाणपत्र बनवाने की बात सोची थी ताकि कोई छोटी मोटी नौकरी उसे मिल जाए। इस बात पर पिताजी और माँ बस आसमान देखते रहे थे। उन दिनों अभी बहन थी तभी तो उसने कहा होगा - 'क्या, भइया एकदम से?' इस बाबत मेरी पत्नी ने कहा था कि आप कितने गए गुजरे हैं, आपको शर्म आनी चाहिए। मैं बताना भूल गया हूँ, शायद, कि तब तक मेरी शादी हो चुकी थी। शालू को लेकर मेरी पत्नी स्पष्ट है - 'हम उतने बड़े बड़े सपने नहीं देखेंगे।'

पत्नी से बिना बताए मैं शालू को लेकर ढेर सारे सपने देखता हूँ। शालू के सपनों के अलावे मेरे पास कुछ सपने अन्य भी हैं। जैसे एक सुबह मैं उठूँ और मैं 'गुलशन' हो गया रहूँ और गुलशन 'मैं' हो जाए। एक बार फिर वह देखने सुनने लगे। मजा आ

जाएगा। मेरा भाई गुलशन। क्योंकि मुझे उस नियम पर अगाध विश्वास है कि बेटे का चेहरा माँ से मिले तो वह भाग्यशाली होता है।

कभी कभी इच्छा होती है कि वह सब सोचूँ जो गुलशन बिना किसी से कहे अनवरत सोचता रहता होगा और आखिर वह क्या करता होगा? उसे नींद भी आती होगी? कभी कभी इच्छा होती है कि इन घटनाओं का ख्याल आते ही इन्हें किसी अन्य व्यक्ति पर प्रत्यारोपित करके सोचूँ - पर होता यह है कुछ ही दूर तक सोचने के बाद मुझे उस अन्य व्यक्ति पर दया आने लगती है।

पर आज छुट्टी के दिन के कारण कुशवाहा किराना वाले के यहाँ अखबार पूरा पढ़ना मुझे नया जीवन दे गया। क्या किस्मत है? मैं यहाँ बिस्किट लेने आया था। हर महीने एक ब्रिटैनिया टाईगर, दो रुपया वाला, ले जाता हूँ - क्योंकि हर महीने पुलिस के दो लोग मेरे भाई को देखने आते हैं, वह अपनी जगह पर है या नहीं। आसपास के क्षेत्रों में कोई अपराध हो तो भी वे लोग उसे देखने आते हैं।

आज दो अक्टूबर की छुट्टी न होती तो मैं चौथे पन्ने के कोने में छपी खबर कहाँ पढ़ पाता जो जिंदगी भर मेरा संबल बनीं रहेगी। फुर्सत मिली है तो पूरा अखबार पढ़ गया हूँ, आज। खबर है कि नैनीताल के दूर-दराज क्षेत्र में एक लड़का पकड़ा गया है, जिसका नाम राजदीप है, उसकी उम्र उन्नीस साल है, उसके पास से कुछ नक्सली साहित्य भी बरामद हुआ है।

मुझे तो यह खबर आँखों के सामने घटती दिख रही है। अपने भाई के बारे में तमाम बातें राजदीप से बदल कर सोचने की कोशिश करूँगा तो मुझे राजदीप पर दया आएगी या नहीं ये तो बाद की बात है, पहले तो यह खबर - इस छोटी सी खबर में यह भी लिखा है कि राजदीप की माँ बड़े बड़े अधिकारियों तक गुहार लगा रही है कि उसका बेटा निर्दोष है।

ये खबर पढ़ने के बाद अब मैं ढेर सारे काम निबटाऊँगा और अगर इसे भूला नहीं तो अगले कई दिनों तक यह भी चाहता रहूँगा कि राजदीप की माँ को कोई चोर की माँ न कहे।

https://www.hindiadda.com/bhoolana/